डिब्बाबंद फुड से अपनी सेहत दाँव पर मत लगाईये !

मैगी को लेकर सरकारी स्तर पर भी नहीं बल्कि राजनीतिक स्तर पर भी ज़बर्दस्त जागरुकता पैदा हुई है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश के लोगों को किस तरह से ज़हर परोस रही है। सरकार से लेकर आम लोगों और राजनीतिक दलों के लोगों ने भी मैगी सहित तमाम जहरीले उत्पादों के खिलाफ मोर्चा खोलकर इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को मुँह छुपाने पर मजबूर कर दिया है। जन हित के मुद्दों पर पूरी ताकत से लड़ने वाले भाजपा के राज्यसभा सांसद श्री विजय गोयल ने इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों और डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों की परदे के पीछे की हकीकत उजागर की है। प्रस्तुत है उनका ये विचारोत्तेजक लेख।

नेस्ले की मैगी को लेकर देशभर में विवाद ने कई ऐसे गंभीर सवाल फिर से उभार दिए हैं, जिन पर चर्चा की सख्त जरूरत है। सवाल चूंकि नागरिकों की सेहत से जुड़े हैं, लिहाजा इनसे अब और बचना पूरे देश के लिए हितकर नहीं होगा। बच्चे-बच्चे को रटाया जाता है कि 'हेल्थ इज वेल्थ" यानी सेहत ही संपत्ति है। लेकिन इस तरफ कोई ठोस पहल न तो समाज करता है और न ही सरकारें। वर्ष 2006 में भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के तहत एक प्राधिकरण एफएसएसएआई बना था, लेकिन वह कितना असरदार है, यह साबित करने की जरूरत नहीं है।

नेस्ले की मैगी का स्वाद एक-दो महीने से नहीं, कई साल से आम भारतीय की जुबान पर चढ़ा है, लेकिन इसमें खतरनाक रसायन की बात सामने आने में इतने साल क्यों लगे ? जवाब बहुत सीधा है कि देश में डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों के मामले में मानक कागज पर भले ही बन गए हों, व्यावहारिक तौर पर उनकी निगरानी के इंतजाम नहीं के बराबर हैं। आज मीडिया की सक्रियता की वजह से मैगी का मसला सुर्खियों में आ गया, लेकिन ऐसे बहुत से उत्पाद हैं, जिनकी कभी ढंग से जांच ही नहीं की जाती। मैगी से पहले इतने बड़े स्तर पर जिस खाद्य या पेय के खिलाफ माहौल बना था, वह था कोका कोला। वर्ष 1977 में तत्कालीन केंद्र सरकार ने कोका कोला पर पाबंदी लगाई थी, लेकिन वह फिर बाजार में आ गया। हालांकि करीब दस साल पहले एक एनजीओ ने अपने स्तर पर जांच कराकर कोका कोला में मिलावट का आरोप लगाया था। बाद में पता चला कि यह देश के पानी में प्रदूषण की वजह से था, लेकिन अब कोक की क्या स्थिति है, सभी जानते हैं। यानी गुणवत्ता के आधार पर दो मिनट वाली मैगी पर बैन लगा है, लेकिन सही मानकों के साथ वह फिर बाजार में आ ही सकती है।

एक बड़ा सवाल यह भी है कि हमारे देश में खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता की जांच के लिए जो लैब हैं, वे

कितने सक्षम हैं ? मैगी मामले को ही लें। इसकी शुरुआत करीब 16 महीने पहले यूपी के बाराबंकी से हुई। सैंपल जांच के लिए गोरखपुर भेजे गए और वहां से कोलकाता। अब जाकर नतीजा आया कि मैगी में सेहत के लिए खतरनाक तत्वों की मिलावट है। साफ है कि केंद्र और राज्य सरकारों के सक्षम विभाग न तो समय-समय पर जरूरी जांच में दिलचस्पी लेते हैं और न ही देश में सैंपलों की सही और त्वरित जांच के पुख्ता इंतजाम हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान को ले लीजिए। राज्य सरकार की लैब में मैगी जैसी मिलावट की जांच की सुविधा ही नहीं है। वहां इस किस्म की जांच निजी लैब के भरोसे है।

एक बात और ध्यान देने लायक है। शहरों में ज्यादातर मंझोले स्तर के कामगार क्या, उच्च मध्यम वर्ग के भी बहुत से लोग सड़क किनारे खड़े ठेलों पर ही सुबह-शाम खाते हैं। जो पेट भरने के लिए नहीं खाते, वे जीभ का स्वाद बदलने के लिए अकसर चाट-पकौड़ी खाते हैं। क्या इस तरह के खान-पान के लिए कोई मानक हैं ? जो मानक हैं भी, क्या उनकी जांच के लिए हम कोई सरकारी तंत्र खड़ा कर सके हैं ? अगर कोई ठेले वाला ईमानदारी से खाने-पीने का सामान शुद्ध बनाना चाहे, तो क्या उसके पास विकल्प हैं ? आटा-मैदा और मसालों की बात तो छोड़िए, उसके पास शुद्ध पानी तक नहीं है। फिर प्रदूषित पानी की सिंचाई से पैदा हुई सब्जियों का विकल्प वह कहां से लाएगा ? सवाल है कि इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? सामाजिक चेतना या सरकारें या फिर दोनों ?

मैगी को फिलहाल बाजार ने बाय-बाय कह दिया है, तो जाहिर है कि फास्ट फूड के आदी लोग अब उसके विकल्प चुनेंगे। सवाल यह है कि मैगी के सभी विकल्पों की जांच के लिए क्या कोई मुहिम चलाई जाएगी ? मेरा मानना तो यह है कि ऐसा अभियान जरूर चलाया जाना चाहिए और नियमित तौर पर इसका इंतजाम होना चाहिए, लेकिन जितना हौव्वा मैगी को लेकर खड़ा हो गया है, उसकी जरूरत नहीं है। संबंधित विभागों, प्रयोगशालाओं और मीडिया को ऐसा माहौल नहीं बनाना चाहिए, जिससे देश के लोग सभी चीजों को शक की नजर से देखने लगें। हां, वे जागरूक रहें, इसके लिए तंत्र विकसित करने की जरूरत तो है।

देश में करीब 80 हजार छोटी-बड़ी कंपनियां डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ के धंधे में हैं। लगता नहीं है कि इन कंपनियों के उत्पादों की नियमित जांच होती है। यह बाजार 30 फीसद की दर से बढ़ रहा है। फिलहाल देश में यह कारोबार करीब दो लाख करोड़ रुपए का है। लिहाजा मैगी के बहाने जो बात सामने आई है, वह असल में देश की सेहत के लिए कितनी खतरनाक है, यह समझना मुश्किल नहीं है। खुद फूड सेफ्टी एंड स्टेंडर्ड्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया यानी एफएसएसएआई मानती है कि देशभर में 30 फीसदी फूड सैंपल जांच में फेल साबित हो रहे हैं। पिछले साल एफएसएसएआई ने देशभर से महज 28 हजार सैंपल जांच के लिए भेजे। इनमें 60 फीसदी नमूने पानी और दूध से बने प्रोडक्ट के थे। जबकि 80 हजार कंपनियां कितने फूड प्रोडक्ट बना रही हैं, इसका अंदाजा लगाना आसान है, फिर इतनी कम सैंपलिंग से क्या होगा ? सवाल यह भी है कि ज्यादा सैंपलिंग कर भी ली जाए, तो क्या जांच कम समय में संभव है ?

जब तक जांच नहीं होगी, मिलावट का पता नहीं चलेगा। जब इसमें कई साल लगेंगे, तब तक तो मिलावटी सामान बाजार में आता ही रहेगा।

जाहिर है, हालात बहुत पेचीदा हैं। ऐसे में अब देश के लोगों को सोचना है कि उन्हें अपनी सेहत के लिए खान-पान की आदतें बदलनी हैं या नहीं। कंपनियों को सोचना है कि उन्हें देश की सेहत से वाकई प्यार है या नहीं। सरकारें कड़े नियम बनाकर भी ऐसे मामलों में समाज की मदद के बिना ज्यादा कुछ नहीं कर सकतीं।

श्री विजय गोयल की वेब साईट की लिक भी जरुर देखें- http://www.vijaygoel.in/